आत्मानुभूति ही
समयसार है

प्रवचनकार
आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज

: प्रकाशक :
वीर विद्या संघ, गुजरात

आत्मानुभूति ही समयसार है (एक प्रवचन)

प्रवचनकार	:	आचार्य श्री विद्यासागर जी मुनिराज
प्रकाशक	:	श्री दिगम्बर जैन वीर विद्या संघ ट्रस्ट, गुजरात
प्रेरक निर्देशक	:	आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के परम शिष्य बाल ब्र. राजेशजी (दशम प्रतिमाधारी)
संस्करण	:	प्रथम २००० प्रति (१९९५)
प्राप्ति स्थान	:	श्री दिगम्बर जैन वीर विद्या संघ ट्रस्ट, बी/२ संभवनाथ एपार्टमेन्ट, बखारिया कॉलोनी, उस्मानपुरा, अहमदाबाद – १३. गुजरात. फोन : ०७९– ४०६८२३.
मुद्रक	:	साधना ऑफसेट वर्क्स, नरोडा, अहमदाबाद फोन : ८१४५९१

प्रकाशकीय

धरती की पुकार

एक श्रमण की चिंतन धारा, परिवर्तित हुई आत्मानुभूति में । और उसी से निःसृत उपदेश मिला गुलाबी नगर (जयपुर) के श्रावकों को । नामकरण हुआ "**आत्मानुभूति ही समयसार है**" । समय का अर्थ है आत्मा और उसका सार । सत्व निचोड़ है समयसार । कुल मिलाकर यहां कहने का मतलब यही है कि शुद्धात्मा का संवेदन । अनुभव मात्र संयत श्रमण को ही होता है ।

राजस्थान की भीषण गर्मी, श्रावकगण हाल/बेहाल हो रहे थे, उस उपदेश रूपी अमृत को पीना चाह रहे थे, क्योंकि वे बहुत प्यासे और अतृप्त थे, धरती भी सूख–सूख कर चिल्ला रही थी कि यदि अब मेरी प्यास शांत नहीं हुई तो मैं फट पडूंगी ।

धरती की मौन पुकार उन श्रमण ने सुनी/समझी/जिनका जीवन चारित्र के चूल शिखर को छू रहा था । जिनकी सहजता/सरलता/गंभीरता सागर की शान/शौकत को भी मात कर रही थी, ऐसे कुमार योगी सरस्वती के वरद पुत्र ! वाणी सम्राट **आचार्य विद्यासागरजी** ने अपने उपदेशामृत से धरती की तृषा को शान्त किया ।

और जब प्रकृति स्वयं शीतल हो गई, तो वहां के श्रावक अपने आप शीतलता के श्वाँस लेने लगे । उनकी पावन देशना ने जनमानस को चिरकाल के लिये ठण्डा कर दिया, और वहां के श्रावकों को नव्य बोध प्राप्त हुआ कि "ज्ञान के माध्यम से उस आत्मा की अनुभूति की ओर कदम बढ़ जाते है" तो ध्यान रहे ! वही मोक्षमार्ग बन जाता है । **ज्ञान से अनुभव की ओर बढ़ने का नाम है मोक्षमार्ग ।**

उस उपदेशामृत को "गुरुवाणी" रूपी कटोरे में भरा सुश्री प्रीति जैन ने, और अब उस अस्तित्व को कायम रखने के लिए **वीर विद्या संघ गुजरात** इसको पुनः आपके हाथों मे दे रहा है ।

वीर विद्या संघ
गुजरात

"समर्पण"

जिन्होने असंयम रुपी कर्दम में फंसी हुई आत्मा को अपनी उदार एवं
वात्सल्यवृत्ति रुपी डोर से बाहर निकालकर विशुद्ध किया
तथा संयम का बीजारोपण कर
मोक्षमार्ग पर चलने की अपूर्व शक्ति प्रदान की,
उन्ही परमोपकारी, गुरुदेव, परम श्रद्धेय, प्रातः स्मरणीय, शतेन्द्रवन्द्य,
संत शिरोमणी समाधि सम्राट दिगम्बर जैनाचार्यश्री
१०८ **विद्यासागरजी महाराज** के शुभाशीर्वाद से

श्री १००८ पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र हांसी (हिसार) हरियाणा के नूतन चैत्यालय की वेदी प्रतिष्ठा एवं नूतन पाषाणनिर्मित विशालकाय जिनालय के शिलान्यास के शुभ अवसर पर

आपकी ही सुयोग्य परम शिष्या गेहुंआ रंग, तेजयुक्त चेहरा, चोड़ा ललाट,
भीतर तक झांकती सी बड़ी आँखे, हिंत मित प्रिय स्पष्ट बोल,
संयमित सधी चाल, सौम्यमुद्रा बस यही है जिनका अंगन्यास.....
नंगे पांव, लुञ्चितसिर, धवलशाटिका, मयूरपिच्छिका बस यही है उनका वेश विन्यास
विषयाशाविरक्त, ज्ञानध्यान तप जप में निरत करुणासागर, प्रवचनपटु
समता–विनय–धैर्य और सहिष्णुता की साकारमुर्ति, भद्रपरिणामी साहित्यसृजनरत,
साधना में व्रज से भी कठोर, वात्सल्य में नवनीत से भी मृदु,
आगमनिष्ठ गुरुभक्ति–परायण, बस यही है जिनका अन्तर आभास
पूज्यनीय आर्यिका रत्न १०५ श्री दृढमति माताजी के
कर कमलों मे अनन्य श्रद्धा एवं गुरुभक्ति पूर्वक सविनय–
सादर समर्पित

ब्र. राजेश

"आमुख"

सूरज कि किरणें सप्त रंगों से परिपूर्ण होती है। जरुरी नहीं है कि जो रंग उसका मुझे दिखा केवल वही आपको दिखे। यह प्रत्येक का निजी मामला है कि वह आचार्य श्री विद्यासागर के वचनों से कितना बोध लेता है। मुझे गुरुदेव के शब्दों का प्रस्तोता बनने का सौभाग्य मिला यह उनकी अनुकम्पा है। मेरे आराध्य की दिव्य देशना सभी के जीवन को आनंद विभोर कर देती है। उनके द्वारा उच्चारित शब्द, जीवंत और ज्वलंत है। शब्द की शक्ति उससे अर्थ की सामर्थ्य, कथ्य की सुगंधमयी अनुभूति इस व्याख्यान में सर्वत्र व्याप्त है।

अमृत कुण्ड में स्नान करके उसका वर्णन करना, शरदकालीन वर्षा में छहाई चांदनी को निहारने का आल्हाद पूर्ण क्षणों के अनुभव को बताना और आचार्य श्री के पीयूष–प्रवचन के विषय में कुछ कहना एक जैसा है।

इस पुस्तक में ऐसे मील के पत्थर खड़े है जो हमें हर संघर्ष के बीच से आगे बढ़ते रहने का प्रोत्साहन देते हैं। जो आचार्य श्री के सम्पर्क में है, वे तो न प्रत्यक्ष में, अपितु स्मृतियों में भी उनका दर्शन और सत्संग करते है यह पुस्तक सारे जहान के लिए है। आत्मरुपान्तर के लिए है। गुरुजी स्वयं में ही एक जीवन क्रान्ति है।

मेरी नन्हीं सी कलम कैसे समेटे इस विराट व्यक्तित्व को इन छोटे छोटे शब्दों में जिन्होने हमे प्रदान किया है अस्तित्व बोध। उनके जीवन के आईने को आर–पार देखते हुए अपनी झलक दिखने लगती है हम सभी अपने गुरुदेव की अनोखी कृतियाँ है। हम जो कुछ भी है उन्ही की बदौलत है।

मैने प्रवचनों के संकलन का जो गुरुत्तर भार सम्भाला और प्रत्यन्त किया है कि शब्दों का तारतम्य छूटने ना पाये और पढने वालो को ऐसा लगे कि साक्षात आचार्यश्री ही प्रवचन दे रहे है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन का महत्वपूर्ण योगदान **वीर विद्या संघ, गुजरात** का है साथ ही प्रस्तुत कृतियों के सम्पादनादि कार्यो में पूज्य आर्यिका रत्न **१०५ श्री दृढमति माताजी** के संघ का भी अति महत्वपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। मैं उनको भी बधाई देता हूँ जिन्होंने अपनी चंचला लक्ष्मी का सद्उपयोग किया है। इन कृतियों के सुंदर और समय पर प्रकाशन करने में मुद्रक **साधना आफसेट वर्क्स, अहमदाबाद** भी बधाई के पात्र है अपना समस्त कार्य छोड़कर उन्होने इस को प्राथमिकता दी यह उनके धर्म पारायण होने का बहुत बडा प्रमाण है। अंत में मैं उन जाने अनजाने सहयोगीयों का भी आभार मानता हूँ जिनका प्रस्तुत कृतियों के प्रकाशन में सहयोग प्राप्त हुआ है यदि स्वर व्यंजन पद आदि में कोई त्रुटि रह गई हो तो मैं क्षमाप्रार्थी हुँ।

ब्र. राजेश

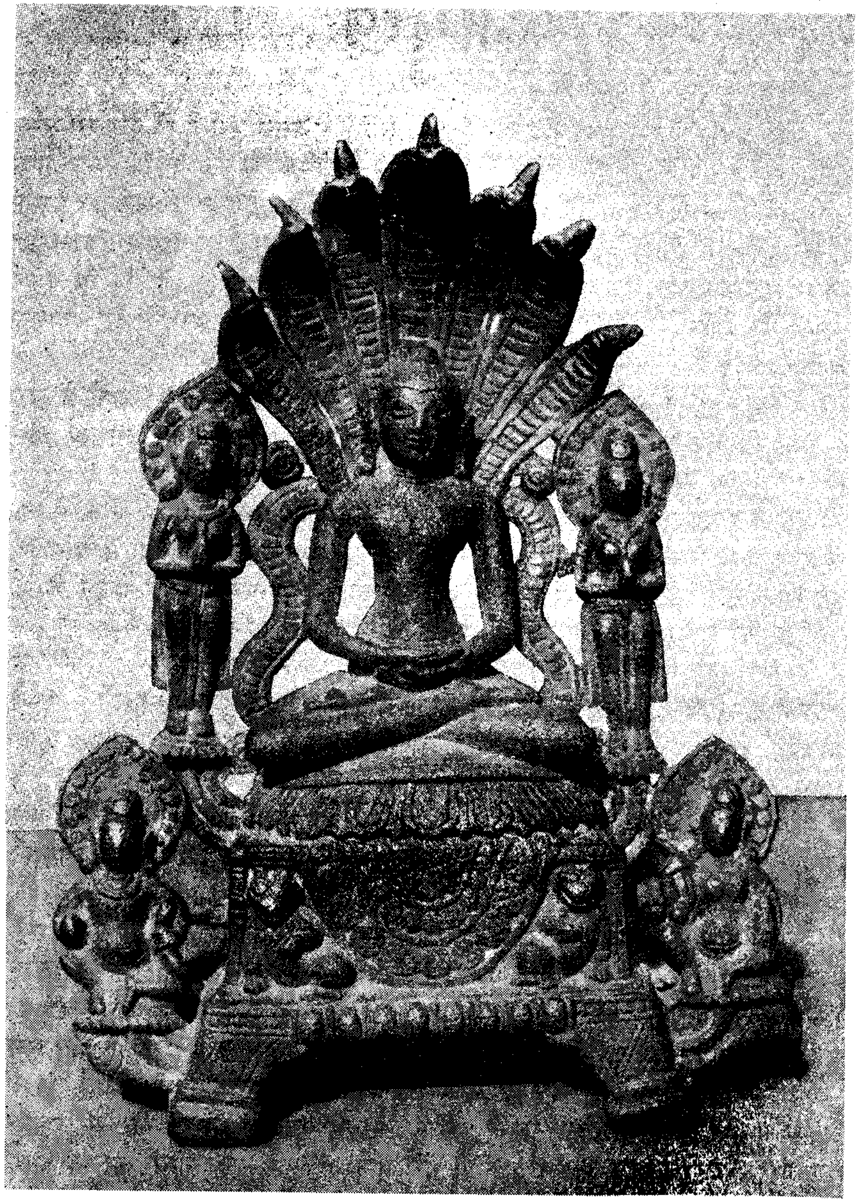

भूगर्भ से प्राप्त १००८ भगवान श्री पार्श्वनाथजी हांसी (हिसार) हरियाणा

आत्मानुभूति ही समयसार है........

स्व की ओर आने का कोई रास्ता मिल सकता है तो देव शास्त्र–गुरु से ही मिल सकता है, अन्य किसी से नहीं । हम जैसे–जैसे क्रियाओं के माध्यम से राग–द्वेषों को संकीर्ण करते चले जायेंगे वैसे–वैसे अपनी आत्मा के पास पहुँचते जायेंगे ।

आत्मा के विकास के लिये वीतराग स्व–संवेदन की आवश्यकता है । स्व–संवेदन के माध्यम से हमें वे दर्शन हो सकते हैं जो आज तक नहीं हुये ।

पथ एक ही है, मार्ग एक ही है, जो सामने चलता है वह मुक्ति का पथ चाहता है और 'रिवर्स' में चलता है वह संसार का पथ चाहता है ।

संसारी प्राणी को जो कि सुख का इच्छुक है उसे वीतरागी सर्वज्ञ हितोपदेशी, उपदेश देकर हित का मार्ग प्रशस्त करते हैं । वे भगवान जिनका हित हो चुका है फिर भी जो हित चाहता है उसके लिये वे बहुत कुछ देते हैं, कृतकृत्य होने के उपरान्त भी वे सहारा देते हैं, इशारा देते हैं और हमें भी भगवान के रूप में देखना चाहते हैं । संसारी प्राणी सुख का भाजन बन तो सकता है । किन्तु वह अपनी पात्रता को भूल जाता है, अपनी शक्ति को भूल जाता है, इससे यही परिणाम निकलता है कि वह सुखी बन नहीं पाता । वह भेद विज्ञान एक बार हो जाये, बस भगवान बन सकते हैं । महावीर भगवान व अन्य संतों ने जोर के साथ कहा है कि जो कोई भी धार्मिक क्रियायें हैं वे सब 'मैं भगवान बनूं' 'मैं भगवान बन सकता हूँ' सर्वप्रथम इन्हीं लक्ष्य को लेकर होनी चाहिये इसके उपरान्त ही वे सारी क्रियायें धार्मिक मानी जा सकती हैं । यह उसकी व्यक्तिगत दृष्टि के ऊपर आधारित है वह यदि भगवान नहीं बनना चाहता है या भगवान बनने की कल्पना तक नहीं करता है तो ध्यान रहे उसकी सारी की सारी क्रियायें सांसारिक ही कहलायेगी । **क्रियायें अपने आपमें सांसारिक हैं, न धार्मिक हैं, दृष्टि के माध्यम से ही वे क्रियायें धार्मिक हो जाती हैं और एक प्रकार से चारित्र का रूप धारण कर लेती हैं ।**

चलना आवश्यक है किन्तु दृष्टि बनाकर चलना है, जब तक दृष्टि नहीं बनती तब तक उस चलने को चलना नहीं कहते । उदाहरण के लिए समझने के लिये आप कारगाड़ी चला रहे हैं, चलाते चलाते उसे रोक देते हैं और उसको 'रिवर्स' में डाल देते हैं । गाड़ी चल रही है कि नहीं ? चल रही है किन्तु उल्टी चल रही है । यदि उल्टी हि

चल रही है तो उसे चलना नहीं कहेंगे। यद्यपि गाड़ी का मुख सामने ही है और आप लोगों का मुख भी सामने ही है लेकिन गाड़ी चल रही है पीछे की ओर, उसी प्रकार आप लोगों की दृष्टि के अभाव में जो कोई भी क्रियायें होती हैं वे सारी की सारी क्रियायें 'रिवर्स गाड़ी' के अनुरूप होती हैं गाड़ी जब 'रिवर्स' में रहेगी तब तक वह पीछे ही जायेगी और पीछे अपने को जाना नहीं है, रास्ता आगे की ओर है, दिखता है कि हम जा रहे हैं, चल रहे है किन्तु अभिप्राय यदि संसार की ओर हो, मन में भगवान बनने का भाव न हो, तो वे क्रियायें ही क्या ? वे क्रियायें मोक्षमार्ग के अन्तर्गत नहीं आ सकती। मोक्षमार्गी तभी कहला सकता है जब कि वह मोक्ष पाने की इच्छा करे और मोक्ष पाने की इच्छा करता है तो निश्चित रूप से, वह गाडी 'रिवर्स' में नहीं डालेगा। उसके कदम, उसके चरण अपनी शक्ति के अनुरुप उसी ओर बढेंगे जिस ओर भगवान गये हैं, मुक्ति का पथ जिस ओर है। सामने चलता है तो वह मुक्ति का पथ चाहता है। और 'रिवर्स' में चलता है तो वह संसार का पथ चाहता है। दो ही तो पथ हैं- एक मुक्ति का और एक संसार का। बल्कि यूं कह दो आप कि संसार का मार्ग और मुक्ति का मार्ग एक ही है, एक ही प्रकार है, सामने चलना तो मुक्ति का मार्ग, पीछे की ओर चलना संसार का मार्ग, मार्ग एक ही है।

जयपुर से आगरा की ओर जायेंगे तो आगरा का साईनबोर्ड मिलेगा, आगरा से जयपुर की ओर आयेंगे तो इधर जयपुर का साईन बोर्ड मिलेगा, किन्तु पत्थर एक ही है, शिला एक ही है। इस जोर से जाते हैं तो आगरा लिखा मिलता है और उधर से आते हैं तो जयपुर लिखा मिलता है। अर्थ यह है कि मार्ग एक है। सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्र रुप जो मोक्षमार्ग है उससे विलोम कर दो आप को मिथ्यादर्शन-मिथ्याज्ञान-मिथ्याचारित्र यह संसार मार्ग बन जाता है ऐसा नहीं है कि दो लाइने चल रही है-ये सम्यग्दर्शन की लाईन है और ये मिथ्यादर्शन की लाईन है दोनों एक साथ नहीं चल सकते क्योंकि व्यक्ति एक है और रास्ता भी एक ही है। दिशायें दो है दिशाये भी कोई चीज नहीं है, जब चलता है तब दिशा बनती है, जब बैठा रहता है तो दिशा की कोई आवश्यकता नहीं है, न दिशा की, न विदिशा की, न ऊपर की, न नीचे की। जब गति प्रारम्भ हो जाती है तब दिशा-बोध की आवश्यकता होती है जब चलना प्रारम्भ होता है तभी उल्टा-सीधा इस प्रकार की कल्पनायें उठती है। अतः भगवान बनने के लिए जो कोई भी आगम के अनुरुप आप क्रिया करेंगे वह सब मोक्षमार्ग बन जायेगा। **इसके लिये क्रम के अनुरुप ही** हम अपने कदम बढायेंगे तो अबश्य सफलता **मिलती चली जायेगी। सफलता भी**

ठीक-ठीक चलने से मिलती है और क्रम के अनुरुप चलने से मिलती है एक साथ तो हो नहीं सकती।

हम कहते हैं-* '**सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः**', रत्नत्रय की और भी प्ररुपणा करते हैं, सुनते है, सुनाते हैं, किन्तु इसमें अनुभूति नहीं होने का सही सही कारण पूछा जाये तो उस ओर हमारा जीवन ढ़लता नहीं, वह ऊपर-ऊपर रह जाता है; जहाँ जीवन ढ़ल जाता है वहां अनुभूति होती है।

अनुभूति को आचार्यों ने बहुत महत्व दिया है। ज्ञान को महत्व नहीं दिया किन्तु अनुभूति को महत्व दिया। अनुभूति के साथ ज्ञान अवश्य होगा यह नितान्त आवश्यक है। ज्ञान पहले हो ओर अनुभूति बाद में हो यह कोई नियम नहीं, जिस समय अनुभूति होगी उस समय ज्ञान अवश्य होगा लेकिन जहाँ ज्ञान हो वहाँ पर अनुभूति हो यह नियम नहीं।

समझने के लिये-लौकिक दृष्टि से कोई भी डाक्टर एम.बी.बी.एस. हो जाता है, किन्तु वह उपाधि मात्र से डाक्टर नहीं कहलाता उस परीक्षा के उपरान्त भी उसे 'प्रेक्टीकल' देना आवश्यक होता है। उस प्रेक्टीकल में क्या ज्ञान दिया जाता है ? जो कोई ज्ञान था वह तो ले लिया फिर उसके उपरान्त क्या ज्ञान ? ज्ञान और कुछ नहीं किन्तु जो प्रेक्टीकल कर रहे हैं उसको देखना भी आवश्यक होता है, मजबूती के लिए, दृढ़ता के लिये, आज तक जो कुछ भी परोक्ष रूप से जाना था उसे आज प्रत्यक्ष रूप से देखेगा प्रयोगशाला में। फिर एक-दो साल उनको प्रशिक्षण (ट्रेनिंग) देना पड़ता है। प्रशिक्षण पाने के बाद ही वे अस्पताल खोल सकते हैं या रोगी की चिकित्सा कर सकते हैं। इसी प्रकार आप लोगों ने सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र के बारे में ज्ञान तो बहुत प्राप्त कर लिया, पर अनुभूति की ओर आपकी दृष्टि नहीं जा रही।

हमने इस ज्ञान को किस लिये प्राप्त किया है ? यह आपका ज्ञान तब तक कार्यकारी नहीं होगा जब तक कि अनुभूति की ओर दृष्टिपात नहीं करेंगे। 'प्रेक्टीकल' नहीं करेंगे। सैद्धान्तिक व प्रायोगिक (थ्योरिटिकल व प्रेक्टीकल) में यही तो अन्तर है। जो सैद्धान्तिक रूप में हमने जाना, देखा, अनुमान किया है, ध्यान किया है वह सारा का सारा प्रयोगशाला में प्रत्यक्ष हो जाता है। इसलिये आचार्यों ने कहा है जब ज्ञान के माध्यम से उस आत्मानुभूति की ओर कदम बढ़ जाते हैं। तो ध्यान रहे, वही मोक्ष मार्ग बन जाता है। अन्यथा उस ओर कदम नहीं उठ रहे,

* तत्वार्थसूत्र - अ. १ / सू. १

कदम किस ओर उठ रहे हैं तो विलोम में रिवर्स में वह गाड़ी चली जायेगी, वह मिथ्यादर्शन–मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्र के साथ चली जायेगी । इनका ज्ञान कोई मूल्य नहीं रखता ।

अनुभूति रागानुरूप हो रही है या वीतरागानु रुप हो रही है, परिणाम उसी के अनुरूप निकलने वाला है । मोक्षमार्ग की अनुभूति तब होगी जब जैसा हमने सुना, देखा, जाना है उसको वैसा ही अनुभव कर लिया जाये और अनुभव के लिए पुरुषार्थ की आवश्यकता है जानने के लिए इतना पुरुषार्थ आवश्यक नहीं जितना कि अनुभव करने के लिये आवश्यक है । कोई भी कार्य बिना पुरुषार्थ के नहीं हो पाता

बैठे–बैठे जाना जा सकता है किन्तु बैठे–बैठे चला नहीं जा सकता । जिस समय जा रहे हैं उस समय देखा भी जाता है, जाना भी जाता है । मैं सदैव कहता हूँ–देखभालकर चलना । इसमें कोई संदेह नहीं कि जीवन में जो कोई भी अनुभूति होती है वह इन तीनोंकी (देख+भाल+चलना = दर्शन+ज्ञान+चारित्र) की समष्टि के साथ ही होगी । इसलिए आप लोगों को रागानुभव हो रहा है फिर भी सैद्धान्तिक (थ्योरीटिकल) ज्ञान चल रहा है । इसलिये शांति, सुख, आनन्द जो मिलना चाहिये वह नहीं मिल रहा है । एक क्षण के लिये भी जो अनुभूति होती है, आचार्य कहते हैं –

***"सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा अहमिन्द्र को नाही कह्यो"** इसमें कोई सन्देह नहीं कि चाहे चक्रवर्ती हो चाहे अहमिन्द्र हो, (अहमिन्द्र जो कि सर्वार्थ सिद्धि इत्यादिक में रहते हैं, उनके पास नियम से सम्यग्दर्शन रहता है, सौधर्म इन्द्र के पास क्षायिक सम्यग्दर्शन रहता है) इन्द्र हो, नागेन्द्र हो, नरेन्द्र हो, धरणेन्द्र हो, कोई भी हो उसे वह मोक्षपथ उपलब्ध नहीं हो सकेगा क्योंकि ये सारे के सारे असंयमी है अर्थात् इन्हें सैद्धान्तिक ज्ञान तो हो सकता है किन्तु प्रायोगिक (प्रेक्टीकल) नहीं हो सकता । ये बात ठीक है कि प्रायोगिक उसीको मिलता है जिसने सैद्धान्तिक को अपना लिया है । एम.बी.बी.एस.उपाधि को जब तक प्राप्त नहीं करेगा, परीक्षा पास नहीं करेगा तब तक वह प्रायोगिक में नहीं आ सकता पर जिसने प्रायोगिक को अपना लिया उसके लिये नितान्त आवश्यक है कि सैद्धांन्तिक उसके पास है ही । तो अनुभव के लिए ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है, अनुभव के लिए दर्शन ही पर्याप्त नहीं है, अनुभव के लिए तीनों की आवश्यकता है, समष्टि की आवश्यकता है ।

वह अनुभूति, वह अपनी आत्मा की एक प्रकार से परिणति–शुद्ध परिणति है

* छहढ़ाला छ्टीढाल/२०

उसमें लीन होने योग्य जो कोई भी परिणमन है वह सारा का सारा उसी व्यक्ति के लिये संभाव्य है । उसी के लिए वह द्वार खुला है जिसने इन तीनों को (दर्शन ज्ञान–चारित्र को) प्राप्त किया है । जो व्यक्ति भगवान बनना चाहता है उसको सर्वप्रथम परमात्मा के दर्शन करने से जो सैद्धान्तिक बोध प्राप्त होता है उसके माध्यम से वह अपने प्रयोग (प्रेक्टीकल) पर आ जाता है । यह नितान्त सत्य है कि वह अपनी अनुभूति कर लेता है क्योंकि 'मैं भगवान बन सकता हूँ' इस प्रकार का जो विचार उठेगा वह भगवान को देखे बिना उठेगा नहीं, इसलिये भगवान का दर्शन करना परमावश्यक है । यदि भगवान बनने की जिज्ञासा मन में उत्पन्न होगी, तो वह भगवान को देखने से ही होगी, इसलिये दर्शन परमावश्यक है भगवानका । लेकिन भगवान का दर्शन मात्र करने से यह नक्शा तो बन सकता है, यह भावना तो बन सकती है कि 'मुझे भी भगवान बनना है' लेकिन इतने मात्र से भगवान नहीं बन सकते । आचार्य कहते हैं कि– यदि भगवान बनना चाहते हो तो आगे की प्रक्रिया और अपनाओ । देख लिया आँखों से, पर पाया नहीं तो पाया कैसे जाता है ? आँखों से नहीं, आँखों से तो देखा जाता है, तो अनुभूति जो होगी, प्राप्ति जो होगी संवेदना जो होगी (ये एकार्थ वाचक हैं), आत्मा की या परमात्माकी उपलब्धि जो होगी उसके लिये संयम नितान्त आवश्यक होता है । वह संयम इन्द्रिय संयम और प्राणि संयम होता है और इसके उपरान्त वह अपने आप में लीन हो सकता है ।

यह मोक्षमार्ग का सिद्धान्त (थ्योरी) है उसको समझ तो रहे हैं हम, लेकिन यह साहस नहीं कर पा रहे हैं कि उसमें किस प्रकार लीन हो जाये ? और उसी को आचार्यों ने भक्ति गाथाओं से, प्रत्येक पंक्तियों में यही खुलासा करने का प्रयास किया कि इसकी गति किसी न किसी रूप से 'रिवर्स' न होकर सामने हो जाये और आप 'रिवर्स' में ही मजा ले रहे हैं । किन्तु साथ में ध्यान रखो कि 'रिवर्स' में क्या गाड़ी की गति तीव्र होती है ? नहीं ? धीमी धीमी होती है, मजा भी नहीं आता । पर हम उसी को समझ रहे हैं कि गाड़ी चला रहे हैं ।

भगवान का दर्शन व आत्मा का दर्शन नितान्त आवश्यक है । भगवान के दर्शन तो हमने किये; किस दृष्टि से किये हैं, इसका तो आप ही निर्णय कर सकते हैं कि किस दृष्टि से किये हैं । भगवान बनने की दृष्टि से किया होता तो यह अवश्य फलीभूत हो जाता और भगवान बनने की प्रक्रिया भी आपके जीवन में आ जाती । अभी कोई चिन्ह नहीं देख रहे हैं, इसलिये आचार्य कुन्दकुन्द कहते है, कि–अपने जीवन में इस प्रकार का परिवर्तन जब तक नहीं लाओगे तब तक शांति

का कोई ठिकाना नहीं, अनुभूति का मात्र विश्लेषण किया है । और संसारी जीव की अनुभूति और मोक्षमार्ग की अनुभूति ये दोनों एक रूप नहीं है । अनादिकाल से रागरूप ही अनुभूति हो रही है आप लोगों को । क्योंकि-सभी संसारी जीवों की जो संवेदना अनुभूति है वह रागानुभूत है । उस संवेदन की, उस अनुभूति की हम बात नहीं कर रहे किन्तु नहीं चाहें तो भी हो रही, उससे संसार का विकास हो रहा है, आत्मा का विनाश हो रहा, आत्मा के विकास के लिये स्व संवेदन की आवश्यकता है पर वीतराग स्वसंवेदन की । राग के अलावा, राग के बिना जो जीवन जिया जाता है वह है वीतराग । स्वसंवेदन के माध्यम से हमें वे दर्शन हो सकते हैं जो आज तक नहीं हुये । फिर क्या करें ? और कुछ नहीं, आगम में जो उल्लेख दिया है उसके अनुरुप अपना आचरण बनानेका प्रयास करो । धीरे धीरे अपनी दृष्टि को, जिन-जिन पदार्थों को लेकर राग द्वेष उत्पन्न हो रहे हैं उन पदार्थों से हटाते चले जायें । जब तक यह प्रयास नहीं होगा तब तक कोई कार्य नहीं होने वाला है । प्रारम्भ यहीं से होगा और जहाँ राग का अभाव होगा वहीं पूर्णता आयेगी । जिन पदार्थोंको देखकर हमारा मन राग में ढ़ला जाता है, हमारा ज्ञान राग का अनुभव करना प्रारम्भ कर देता है, वह पदार्थ हमारे लिये वर्तमान में इष्ट नहीं है । जिससे अलगाव रखो और अपने ज्ञान की शुद्धि करना प्रारम्भ कर दो । धीरे-धीरे पर से स्खलित होते हुये आप अपनी ओर आ जायेंगे ।

राग का केन्द्र आत्मा नहीं है, राग का केन्द्र जो कोई भी बनेगा उसमें पर पदार्थ निमित्त होगा । इसलिये पर का विचार मत करो, पर को प्राप्त करने की जिज्ञासा मत करो, पर के साथ सम्बन्ध मत रखो, आचार्योंने यह बार-बार कहा है । ऐसा कोई शार्टकट नहीं जो कि पर के साथ सम्बन्ध रखते हुये भी हम वहां पर पहुँच जायें, आप उसी में रह रहे हैं, ऐसा दीखता है, ऐसा तो नहीं है ? हाँ, महाराज यह रास्ता तो बहुत दूर दिख रहा है और हम खडे होकर यही देख रहे हैं कि कोई शार्टकट हो तो चले जायें । ऐसा शोर्टकट कोई नहीं है । इस शार्टकट के पीछे ही सारा अतीत गुजर गया है । रास्ता एक है यह, इस पर आना ही होगा, इसलिये आना होगा कि इस ओर जाना चाहते हैं । किन्तु जाना चाहते हुये भी जो कुछ हमने अर्जित किया है वह टूट न जाये, फूट न जाये यह सोचकर, इन्हीं को सुरक्षित रखना चाह रहे हैं ।

एक सेठजी थे, भगवान के अनन्य भक्त । एक दिन वे एक गजानन गणेश की प्रतिमा लेकर आये और खूब धूमधाम से पूजा करना प्रारम्भ कर दिया । गजानन

को मोदक बहुत प्रिय होते हैं इसलिये एक थाली में मोदक भी सजा कर नैवेद्य रूप में रखे, सेठजी उस प्रतिमा के समक्ष प्रणिपात हुये, माला फेरी उसकी आरती की और फिर वही पर बैठे बैठे उस प्रतिमा को निहारने लगे । इसी बीच एक चूहा आया और उस थाली में से एक मोदक लेकर चला गया । सेठजी के मने में विचार आया कि - देखो ? भगवान है का स्वरुप बताते हुये कहा गया है कि जो सबसे बड़ा है वह भगवान है जो सबसे वीर होता है वह भगवान होता है । ये गजानन-भगवान नहीं दिखते हैं, यदि ये भगवान होते तो इस चूहे से अवश्य ही प्रतिकार करते । एक इतना सा चूहा इनका मोदक उठा ले गया और ये कुछ न बोले । उसे हटाने की सामर्थ्य ही नहीं है इनमें । हो सकता है कि चूहा भगवान से बड़ा हो, मेरे समझने में कहीं भूल हो गई है । सेठजी ने उस चूहे को मकड़ लिया और पिंजरे में रखकर उसकी पूजा करने लगे । दो-तीन दिन के उपरांत एक दिन चूहा जब बाहर आया तो उसे बिल्ली पकड़ कर ले गई । ओऽहो ! अब अनुभव होता जा रहा है मुझे - सेठजी ने सोचा, मैं अब अनुभव की ओर बढ़ता जा रहा हूँ । जैसे जैसे उसका अनुभव बदलता जा रहा है उस का आराध्य भी बदलता जा रहा है और वह उसकी पूजा में लीन होता जा रहा है । अब उसने बिल्ली को पकड़ लिया क्योंकि सबसे बडी वही है । जिस चूहे को गजानन नहीं पकड़ सके उस चूहे को इसने पकड़ लिया, अतः यही सबडे बडी उपास्य है । अब बिल्ली की पूजा होने लगी । सात आठ दिन व्यतीत हो गये । बिल्ली का स्वभाव होता है कि कितना ही अच्छा खिलादो-पिलादो पर वह चोरी अवश्य करेगी । एक दिन अंगोठी के ऊपर दूध की भगोनी रखी थी, बिल्ली चोरी से दूध पीने गई सेठानीने देख लिया-अरे देखो !, जब सेठजी इसे इतने आदर के साथ पाल रहे हैं, प्रतिदिन एक-आध किलो दूध पिलाते हैं तब भी यह चोरी करती है, तब भी इसका चोरी का भाव नहीं गया । सेठानी को क्रोध आया और उसने बिल्ली की पीठ पर एक लट्ठ मार दिया, बिल्ली मर गई सेठजी बाजार से आये, पूछा-बिल्ली कहां हैं ? मुझे पूजा करनी है । सेठानी ने कहा-कौनसी पूजन ? वह बिल्ली तो चोर है । सेठजी को पूरी घटना बताई, पहले तो खेद हुआ, लेकिन तुरन्त ही खेद दूर हो गया । खेद की बात थी ही नहीं जो मर गया, वह कमजोर है, वीर होता तो नहीं मरता । धन्य हो देवि ! धन्य हो ! तुमने गजब कर दिया, बहुत अच्छा किया । गजानन चूहें से डर गये ते, चूहा बिल्ली की पकड़ में आ गया था और अब तुमने बिल्ली को समाप्त कर दिया पर तुमको समाप्त करने वाला कोई नहीं है । सेठ जी उसके चरणों में बैठ गये ओर उसकी पैर पूजना प्रारम्भ कर दिया । देखो, अनुभूति बडों की ओर बढ़ रही है । अनुभूति होने के

उपरान्त वह छूटता चला जा रहा है जो कि थ्योरीटिकल है, सैद्धान्तिक है, जो हमने मान रखा था । पर जब तक अनुभूति नहीं होती तब तक छोड़ना भी नहीं चाहिये । एक दिन प्रातः सेठ जी ने सेठानी से कहा कि आज हमें दुकान में काम अधिक है, हम साढे दस बजे खाना खायेगे, खाना तैयार हो जाना चाहिये । सेठानी ने कहा ठीक है । प्रति दिन पूजा होने के कारण सेठानी प्रमादी हो गई थी, समय पर रसोई बनी नहीं । जब सेठ जी आये तो बोली – आइये, आइये । अभी तैयार हो जाती है । सेठजी क्रोधित हो उठे क्या तैयार हो जाती है, मैं कह कर गया जब भी तैयार नहीं है ? सेठजी के हाथ में जो कुछ था सेठानी पर उसी से बार कर दिया । सेठानी मूर्च्छित होकर गिर गई एक घण्टे तक बोली नहीं । सेठजी ने सोचा क्या बात है मर गई क्या ? पानी सिंचन किया, थोड़ी देर बाद सेठानी को होश आ गया । सेठजी सोच रहे थे कि अभी तक तो मैं सेठानी को सबसे बडी समझ रहा था किन्तु अब पता चला कि 'मैं ही बडा हूँ । अरे । मैं दुनिया के चक्कर पड़ गया था । **अब मुझे अनुभव हो गया कि मुझ से बढ़कर कोई भगवान है ही नहीं' और वह अपने आप में लीन हो गया ।**

आप लोग समझ नहीं पा रहे हैं रहस्य को । जब तक समझ में नहीं आता तब तक जो कोई भी प्रक्रियायें है उन प्रक्रियाओं को छोड़ना भी नहीं क्योंकि इन प्रक्रियाओं के माध्यम से अनुभव के लिये कुछ गुंजाइश है ।

'स्व' की ओर आने का कोई रास्ता मिल सकता है तो देव–शास्त्र–गुरु से ही मिल सकता है । अन्य किसी से नहीं मिल सकता है । इस लिये इनको तो बड़ा मानना ही है तब तक मानना है जब तक कि हम अपने आप में लीन न हो जायें ।

भगवान का दर्शन करना तो परम आवश्यक है, पर यह ही हमारे लिए पर्याप्त है, यह मन में मत रखना । भगवान बनने के लिये यदि आप भगवान की पूजा कर रहे हैं तो कम से कम मन में तो उठता है कि – अभी तक पूजा कर रहा हूँ पर भगवान क्यों नहीं बन रहा हूँ ? दुकान खोलने के उपरांत आप एक–दो–तीन दिन अवश्य रुक जायें पर फिर सोचते हैं कि–ग्राहक क्यों नहीं आ रहे, क्या मामला है ? धीरे–धीरे विज्ञापन बढाना प्रारम्भ कर देते हैं, बोर्ड पर लिखवाते हैं, अखबारों में निकलवाते हैं कि घूमते घामते कोई आवे तो सही । अर्थ यह है क्रि इतना परिश्रम करके जिस उद्देश्य से दुकान खोली है, उसका तो कम से कम ध्यान रखना चाहिए ।

भगवान बनने के लिये कार्य कर रहे हैं यह तो ठीक है पर आप लोगों का भगवान बनने का संकल्प नहीं है तो फिर भगवान की पूजा क्यों कर रहे हैं ? हमें भगवान थोड़े बनना है, हम तो श्रीमान् बनने के लिये पूजा कर रहे हैं । श्रीमान बनने के लिए पूजा कर रहे हैं, तभी आप टटोलते रहते हैं कि– पूजा तो कर रहा हूँ पर बन नहीं रहा हूँ । अभी बन नही रहा हूँ । लगता है कि वहाँ से ध्वनि निकल रही है– बन जायेगा, ध्वनि, अपने मन के अनुरूप ही निकलती है, ध्यान रखना । यह मनोविज्ञान है । 'भगवान बन जायेगा' वहाँ से ऐसी ध्वनि नहीं निकलती । पर मन में है कि कब साहूकार बन जाऊँगा ? तो ध्वनि निकलेगी कि बन जायेगा । उसके माध्यम से आप अभी तक साहूकार बनने में ही लगे हैं । परिश्रम इसी में समाप्त हो रहा है, यह परिश्रम कितने भी दिन करते रहो, जड़ की उपलब्धि हो सकती हैं पर भगवत् पद की उपलब्धि इस दृष्टिकोण से नहीं हो सकती । **हम जैसे–जैसे क्रियाओं के माध्यम से राग द्वेषों को संकीर्ण करते चले जायेंगे बनाते चले जायेंगे–वैसे–वैसे अपनी आत्मा के पास पहुँचते जायेंगे** । यह प्रक्रिया ही ऐसी है इसके बिना कोई भगवान हो ही नहीं सकता ।

ठहराव बाहर नहीं हो सकेगा । ठहराव केन्द्र में ही होगा । आप परिधि के ऊपर घुमा रहे हैं अपने आपको । जो घुमावदार चीज है, उसका आश्रय लेने से आप भी घूमेंगे ।

देव–शास्त्र गुरु के माध्यम से जिस व्यक्ति ने अपने आपके जीवन को वीतरागता की ओर मोड़ लिया, वीतराग–केन्द्र की ओर मोड़ लिया वह अवश्य एक दिन विराम पायेगा । किन्तु यदि देव–शास्त्र–गुरु के माध्यम से जो जीवन में बाहरी उपलब्धि की बांछा रखता हो तो वही चीज उसे उपलब्ध हो सकती है, आत्मोपलब्धि नहीं ।

मुझे एक बार एक व्यक्ति ने आकर कहा कि, महाराज ! हमने अपने जीवन में एक सौ बीस बार समयसार का अवलोकन कर लिया । कंठस्थ हो गया मुझे ! बहुत अच्छा किया आपने–मैंने कहा अब आपके लिये टेप रिकार्डर की भी कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि कंठस्थ हो गया । लेकिन भैया आपने कंठस्थ किया है ! मैंने एक ही बार अवलोकन किया है और हृदयस्थ किया है । आपने कंठस्थ कर लिया और मैंने हृदयस्थ कर लिया । मैंने हृदयङ्गम कर लिया और आपने शिरोङ्गम कर लिया । आपने उसे मस्तिष्क में स्थान दे दिया, हमने जीवन में स्थान

दे दिया । आपको अभी आनन्द नहीं आ रहा है और हमारे आनन्द का कोई पार नहीं है । तो क्वान्टिटी (संख्या) एक सौ बीस बार से अधिक है या एक की अधिक है ? किन्तु वह ज्ञान है, यह अनुभूति है और अनुभूति ही समयसार है । मात्र जानना समयसार नहीं है ।

समयसार की व्युत्पत्ति आचार्य ने बहुत अच्छी की है–समीचीन रूपेण अयतिगच्छति व्याप्नोति जानाति परिणमति स्वकीयान् शुद्ध गुण पर्यायान् यः सः समयः **अर्थात्– जो समीचीन रुप से अपने शुद्ध गुण पर्यायों की अनुभूति करता है, उनको जानता है, उनको पहचानता है उनमें व्याप्त होकर रहता है, उसी में जीवन बना लेता है वह है– 'समय और उस समय का जो कोई भी सार है वह है– 'समयसार'** । जिस समयसार के साथ व्याख्यान का कोई सम्बन्ध नहीं रहता, आख्यान का कोई सम्बन्ध नहीं रहता, और कषाय का कोई निमित्त नहीं रहता, उसमें मात्र एक रह जाता है बस एक में एक ही विराजमान हो जाता है, उस एक का ही महत्व है । ताश खेलते है आप लोक उसमें एक (इक्के) का बहुत महत्त्व होता है उसी प्रकार '**एकः अहं खलु शुद्धात्माः**, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य ने लिखा है । ताश में बादशाह से भी अधिक महत्व रहता है उस इक्के का । एक अपने आप में महत्त्वपूर्ण है, वह है–शुद्धात्मा । जिस दिन सेठजी ने गजानन की छोड़ दिया चूहे को छोड़ दिया, बिल्ली को छोड़ दिया पत्नी को भी छोड़ दिया उस दिन याचना की कोई आवश्यकता ही नहीं रह गई ।

इस प्रकार अपने कभी किया नहीं । किन्तु यदि अनुभूति के बिना अपने आपमें लग जाओगे तो पेट में चूहे कबड्डी खेलने लगेंगे । क्योंकि जिसका जीवन पराश्रित है वह व्यक्ति उसी के ऊपर (आश्रय के ऊपर) आश्रित है, निर्भर है । इसलिये उसको उसी में आनन्द आ रहा है और आयेगा भी ।

देवशास्त्रगुरु के माध्यम से हम लोगों को यह रास्ता तो मिल जाता है कि अपनी ओर आना किस प्रकार होता है ? क्योंकि देव शास्त्र गुरु शुद्ध पर्याय है । देव के माध्यम से भी शुद्धत्व का भान होता है, गुरु के माध्यम से भी शुद्धत्व का भान होता है; वीतरागता की ओर हमारी दृष्टि जाती है । उनकी जो कोई भी वाणी है उस वाणी में भी राग का, द्वेष का कोई स्थान नहीं रहता और मात्र वीतरागता ही उसमें प्रत्येक पंक्ति में, प्रत्येक अक्षर में मुखरित होती है, इससे उन तीनों के माध्यम से वीतरागता पकड़ में आती है और वह वीतरागता हमारे जीवन का एक केन्द्र बिन्दु होना चाहिये ।

आप लोगों को राग है । एक व्यक्ति ने कहा कि– महाराज ! कुछ न कुछ अंश में तो हमें भी वीतराग मानना चाहिये आपको, हम इतनी वीतरागता की चर्चा आदि सुनते हैं । हमने कहा कि भैया हमने आपको कब रागी कहा ? आप भी वीतरागी हैं । आप लोग कहेंगे – बहुत अच्छा पर । हम वीतरागी कैसे हैं ? वीतरागी इसलिये हैं – '**विगतः रागः यस्य आत्मनः**' अर्थात् जिस व्यक्ति का आत्मा के प्रति राग नहीं है वह वीतरागी है (श्रोता समुदाय में हंसी) आत्मा के प्रति राग है ही नहीं इसलिये आप लोग भी वीतरागी है । और मैं रागी हूँ क्योंकि मुझे आत्मा के प्रति राग है । इस प्रकार आप भी वीतरागी सिद्ध होते हैं । पर इससे कोई मतलब नहीं, मन में कोई सन्तोष नहीं हो रहा आप लोगों को, इसलिये नहीं हो रहा कि आप अभी अनुभव राग का ही कर रहे हैं, द्वेष का कर रहे हैं, मद का कर रहे हैं, पर्यायों का कर रहे हैं किन्तु शुद्ध पर्याय का नहीं, अशुद्ध पर्याय का कर रहे हैं । जबकि भगवान ने यह देशना दी है कि–तुम्हारे पास भी यह भगवत् – पद विद्यमान है किन्तु अव्यक्त रुप से है, व्यक्त रुप से नहीं है शक्ति रुप से है व्यक्ति रूप से नहीं । जो अन्दर है उसका बाहर निकलना है, उसका उद्घाटन करना है उसके लिये ही मोक्षमार्ग की देशना है, यह और कोई चीज नहीं है । मोक्षमार्ग और कोई चीज नहीं, बाहर में कोई समयसार थोड़े ही है जो एक सौ बीस बार पढ़ लो आप । एक सौ बीस बार पढ़कर भी चार सौ बीसी करोगे तो कम से कम सोचो तो सही उसका प्रयोजन क्या सिद्ध होगा ?

जिस व्यक्ति को समय की उपलब्धि हो गई, समयसार की उपलब्धि हो गई, क्या वह अपने समय को दुनियादारी में, खर्च करेगा ? वह समय का अपव्यय नहीं करेगा । जिस व्यक्ति को निधि मिल जाती है क्या वह दस–बीस रुपये की चोरी करेगा ?

कंठस्थ करने को मैं महत्त्व नहीं देता, मुख्यता नहीं देता, मुखाग्र करने को मैं मुख्यता नहीं देता, महत्व है – हृदयङ्गम करने का । मात्र शाब्दिक ज्ञान से कुछ नहीं होने वाला भले ही आप समय–सार को पी लो, घोंट–घोंट कर पी लो । प्रयास तो आज तक यही हो रहा है ।

वैद्यजी के पास एक रोगी गया और ऐसी दवा देने के लिए कहा जिससे (वह) शीघ्र रोग मुक्त हो जाये । वैद्यजी ने देख लिया– एक पर्चा लिखकर दिया और बोले कि इसको दूध मे घोल कर पी लेना । रोगी घर गया, एक कटोरी में दूध

लिया और उस पर्चे को उसमें घोलकर पी गया। (हंसी) दूसरे दिन वैद्यजी के पास गया। वैद्यजी ने पूछा– क्या बात है ? रोगी ने कहा कि–एक दिन में रोग ठीक थोडे ही होता है ? उन्होंने कहा अरे हमने औषधि ऐसा ही दिया था कि एक दिन में ठीक हो जाये। खैर, कौनसी दुकान से दवा लेकर आये थे ? गोलियाँ मिल गई थी क्या ? रोगी ने पूछा–कौनसी गोली ? आपने जो कागज दिया था वही तो थी औषधि। इसी प्रकार समयसार भी वही कागज है–भैया। ये औषध थोड़े ही है। औषधि कहां मिलती है ? जिस दुकान पर मिलती है वहां जाते, उसे ढूंढ़ते, खरीदते फिर लेते तो रोग ठीक हो जाता। एक सौ बीस बार लेने की (पढ़ने की) कोई आवश्यकता नहीं थी और आप एक सौ बीस बार क्यों चार सौ बीस बार कर लो तो भी काम नहीं होगा।

परिश्रम व्यर्थ हो गया क्या आपका 'सार्थक हो गया' ऐसा समझ रहे हैं ? नहीं, सार्थक नहीं है, क्योंकि गाड़ी 'रिवर्स' में चल रही है ? ऐसे यात्रा नहीं होगी, गाड़ी को सीधी रास्ते पर लगाओ। गति दो, तभी प्रगति होगी, मंजिल आयेगी। 'रिवर्स' जाओगे तो रास्ता कटेगा नही बल्कि बढ़ेगा। मंजिल दूर होती जा रही है। इस प्रक्रिया के माध्यम से अनुभूति के अभाव में यह सब एक बोझ का काम कर रहा है अतः अनुभूति के लिये कुछ ही समय का ही प्रयास होता है तो कुछ ही समय के उपरान्त जीवन में क्रान्ति आ सकती है। जैसे–कहां तो गजानन गणेश की पूजा थी और कहा वह बिल्कुल अपनी ओर आ गया, अपने अलावा और कोई पूजा नहीं रही।

आप लोगों के लिए मन्दिर वे ही हैं, देव–शास्त्र–गुरु वे ही हैं, सब कुछ हैं किन्तु इसके उपरान्त भी आपकी गति उधर से इधर आ ही नहीं रही है। इसका अर्थ क्या है ? या तो आप घुमावदार रास्ते पर आरुढ़ हो गये हैं जिससे बार–बार घूमकर वहीं पर आ जाते हो, जैसे तेली का बैल आ जाता है। उसी प्रकार आपका जीवन व्यतीत हो रहा है। पहले छोटे थे, अब बडे हो गये किन्तु खडे वही पर हैं।

जवान है, उसके जीवन में परिवर्तन नहीं आता, जो प्रौढ़ हैं उनके जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आता तो कोई बात नहीं ! किन्तु जो वृद्ध हैं उनमें भी कोई अन्तर नहीं तो क्या मतलब है ? वृद्धत्व के उपरान्त भी वृद्धत्व नहीं आता। वही रासलीला एक साथ अन्तर हो ही नहीं सकता, यह विश्वास जम गया, इस लिए ऐसा हो रहा है। एक समय तो अन्तर आना चाहिये और नहीं आता तो पूछना चाहिये कि क्या बात है

? दो–तीन दिन औषध लेने के उपरान्त यदि किसी प्रकारका परिवर्तन नहीं आता तो पुनः चेकिंग हो जाती है, पुनः उसकी चिकित्सा की जाती है कि क्या बात हो गई ? कुछ न कुछ, लाभ–अन्तर तो होना ही चाहिये था। नहीं आता तो औषध बदलते हैं पुनः निदान करते हैं। इस बात में तो बहुत शीघ्रता दिखाते है, पाँच छः दिन में स्थिति परिवर्तन के अभाव में चिकित्सा परिवर्तन कर लेते है। इसमें महिनों नहीं लगाते। शीघ्रता से सही–सही औषधि देना प्रारम्भ कर देते हैं। घूमते घूमते और रोग बढ़ता गया और जब असली दवाखाना आ जाता है उस समय वह रवाना हो जाता है। आपका जीवन आदि से लेकर अन्त तक बार्डर पर ही खड़ा है, सीटी बजने की देरी है, ऐसी स्थिति में भी आपका कोई निर्णय नहीं है, जीवन में किसी प्रकार **का परिवर्तन नहीं है तो फिर आगे कैसे हो सकेगा ? क्योंकि गाड़ी का मुख बाहर निकल जायेगी तो बाद में वह मुड़ नहीं सकेगी दुर्घटना में मुड़ जाये वह बात पृथक् है**। किन्तु वह सामान्यतः नहीं मुड़ेगी क्योंकि हमने उसको उसी रास्ते पर चलाया है। स्थिति यही है। **मनुष्य जीवन एक प्रकार का प्लेटफार्म है, स्टेशन है। अनादिकाल से जो जीवन राग द्वेष की ओर मुड गया है उस मुख को हम वीतरागता की ओर मोड़ सकते हैं और उस ओर गाडी को चला सकते हैं और उस ओर गाड़ी को चला सकते हैं तो इस (मनुष्य जीवन) स्टेशन पर ही चला सकते हैं।**

स्टेशन आ जाने पर आपको नींद आ जाती है। आपकी निद्रा भी बहुत स्यानी है।आलस्य आता है। आपको क्या करें महाराज, कर्म का उदय ही है। कई लोग कहते हैं–ऐसा। हाँ भैया है। किन्तु समझो तो सही क्या होता है ? निद्रा वहीं पर क्यो जाती है ? आलस्य वहीं पर क्यों आता है ? एक व्यक्ति ने कहाँ – जैसे ही में सामायिक करने बैठता हूँ. जाप करने बैठता हूँ, स्वाध्याय करने के लिए सभा में आ जाता हूँ तो निद्रा आ धमकती है, मुझे सोना ही पड़ता है। अच्छा, बहुत स्यानी है आपकी निद्रा। आपके कर्म भी बहुत सयाने है कि ऐसे स्थान में आने पर ही निद्रा आती है। इसमें कुछ न कुछ रहस्य अवश्य है। मैंने उनसे पूछा कि–जिस समय आप दुकान में बैठते है और नोट के बण्डल गिनते हैं, उस समय कभी निद्रा आई है ? महाराज उस समय (वहाँ पर) तो भूलकर भी नहीं आती ? अच्छा यह अर्थ है। वहाँ पर नहीं आती और यहाँ पर आती है तो निद्रा को भी इस प्रकार अभ्यास कराया है आपने कि यहाँ पर आते ही नींद लेना है, सुनना नहीं है।

एक शास्त्र सभा जुड़ी थी। एक दिन एक व्यक्ति को पंडितजी ने पूछा– क्यों

भैया ! सो तो नहीं रहे हो ? वह कहता है–नहीं ! तो ऊँघ रहा था । किन्तु फिर भी वह 'नहीं' ही कहता है । एक बार, दो बार, तीन बार, ऐसे ही कहा – उसने भी वह जवाब दिया और ऊंघता ही रहा । फिर पंडित जी ने अपना वाक्य बदल दिया और बोले – सुन तो नहीं रहे हो भैया ? उसने तुरन्त उत्तर दिया नहीं तो (श्रोता समुदाय में हंसी) ठीक है भैया । ऐसे पकड़ में आये । सीधे पूछने पर थोड़े पकड़ में आयेंगे आप लोग । सुन रहे हो ? नहीं तो । बस यह 'नहीं तो' आपने याद कर रखा है । कुछ और कोई काम नहीं है ? यहाँ पर आचार्य कुन्दकुन्द कह रहे हैं– समयसार पढ़ रहे हो ? हाँ पढ़ रहे, है । पढ़ रहे हैं तो परिवर्तन क्यों नहीं आ रहा ? समयसार पूरी पढ़ने की भी कोई आवश्यकता नहीं है, एक गाथा ही पर्याप्त है समयसार की इतनी बढ़ी पुस्तक में तो उन्होने अपनी भावनाओं अभिव्यक्त किया है, मूर्त रुप दिया है, शब्द रुप दे दिया है । किन्तु एक ही शब्द में उन्होने कह दिया 'समय' और उसका 'सार' इसके शीर्षक के माध्यम से ही सारा काम हो जाता है । शुद्ध आत्मा का सार–आत्मा के सार को ही 'समयसार' कहा है । इसमे (पुस्तक में) नहीं है वह, आप घोट – घोट कर किसे पीलायेंगे ? समयसार नहीं आयेगा 'समयसार' जीवन का नाम है, चेतन का नाम है और शुद्ध परिणति का नाम हे; पर की बात नहीं स्व की बात है ।

महाराज ! ये बाते आप लोग सुनाते हैं, ये तो हम लोगो को अच्छी नहीं लगती ! आप चटक–मटक सुनाते चले जाये तो बहुत अच्छा होता एक घण्टा निकल जाता ! आप एक घण्टे से इन्ही बातों की पुनरावृत्ति (रिपिटेशन) करते जा रहे हैं ।

भैया ! आत्मा की बात सुनना चाहते हो या दूसरी बात सुनना चाहते हो ? हम क्या है ? यह आप लोगों को मालूम नहीं है ? तो फिर क्या सुनायें ? यह मालूम नहीं इसलिये तो हम यहाँ पर आये हैं– आप यह कह सकते हैं । पर मैं कहूँ तो उसको सुनना भी तो चाहिये । जिस ओर आपकी रूचि नहीं है उसी ओर तो रुचि को जगाना है । जिस ओर रुचि है उसको जगाने की कोई आवश्यकता नहीं है । मेरे उपदेश से उस रुचि को जगाना नहीं है और में उस रूचि को जगाने के लिये कहुँगा भी नहीं । बिना उपदेश के ही वह रुचि स्वयं जग जायेगी । **धर्मोपदेश विषयों में रुचि जगाने के लिये नहीं है । आत्मा की रुचि जगाने के लिये धर्मोपदेश है** । इस ओर रुचि नहीं हो रही है यह में भी जान रहा हूँ, इसलिये नहीं हो रही कि उधर भी चटक–मटक बहुत अच्छी लग रही है ।

एक बच्चे ने अपनी माँ से कहा– "माँ मुझे भूख नहीं लगी है आज ।" "क्यों बेटा ! क्या बात हो गई ?" माँ ने कहा । "कुछ नहीं माँ ।" "तो खाने का समय तो हो गया खा ले, सब शुद्ध है, शुद्ध आटा है घी है ।" "मुझे अभी भूख नहीं है ।" "कुछ खा लिया था ?" आज सुबह तो कुछ नहीं खाया था, तूने ।" "आपने परसो एक रूपया दिया था न, वह रखा था, उससे आज मैंने चाट–पकोडी खा ली ।" अच्छा यह बात है । जिसको चाट–पकोडी मुँह लग गयी, जो तेल में तली चीज खाता है उसके लिये अब शुद्ध घी काम नहीं करेगा । फिर कब काम करेगा ? उसकी, (चाट पकोडी की) आदत थोडी छूट जाये । हर समय तो आप चाट–पकौड़ी खाकर आते हैं, यहाँ एक घण्टा में शुद्ध घी की जलेबी भी खिला दूँ तो क्या काम चलेगा ? यहाँ पर तो चाट–पकोड़ी आयेगी नहीं, यहाँ तो शुद्ध घी की बात है । यदि इसमें थोडी–सी वह (चाट–पकौड़ी) मिला दूं तो यह बदनाम हो जायेगा, इसका असली स्वाद बिगड़ जायेगा इसलिए उसको थोड़ा कम करो और फिर इसे चखो तो सही, कितना अच्छा लगता है ।

हम लोगों को विषय और कषायों को मन्द करना होगा और मन्द जबर्दस्ती किया जाता है, उसकी ओर रुचि होते हुए भी उसको मन्द करना होगा । तभी स्वाद में बदलाहट आ सकती है, नहीं तो नहीं आयेगी । एक हाथ से वह खाते रहे और दूसरे हाथ से वह, तो हाथ तो दो हैं किन्तु मुँह तो दो नहीं है भैया । जिह्वा तो एक ही है, स्वाद लेने की शक्ति तो एक के ही पास है । अभी जो चर्वण हो रहा है उसके साथ इसको मिलाओगे तो मिश्रण हो जायेगा और मिश्रण में सही स्वाद नहीं आ सकता ।

मात्र ज्ञान के साथ वह अनुभूति नहीं आ सकती । उसके साथ संयम की आवश्यकता है, इसलिये–

> *** यों चिन्त्य निज में थिर भये–**
> **तिन अकथ जो आनन्द लह्यो ।**
> **सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा–**
> **अहमिन्द्र के नाहीं कह्यो ॥**

स्वात्मानुभूति का संवेदन– आत्मा का जो स्वाद है वह स्वाद स्वर्गीय देवों के लिये भी दुर्लभ है और वहाँ के इन्द्र के लिये भी दुर्लभ है । कहीं भी चले जाओ

---

* छहढ़ाला छट्टीढ़ाल/२०

सबके लिए दुर्लभ है । केबल उसी के लिये (मनुष्य के लिए) वह साध्यभूत है, संभव है, "जिन्होने अपने आप के संस्कारों को मार्जित कर लिया है अर्थात् राग-द्वेष के संस्कार जिनके बिल्कुल नहीं है । जिनकी अनुभूति में वीतरागता उतर गई है, उसका नाम है स्वसंवेदन, उसका नाम है आत्मानुभूति, उसका नाम है अतिन्द्रिय आन्नद, उसको चाहते हो तो उस तरफ से गाड़ी को हटा दो । अब मोड़ दो उसे एक बार देव-शास्त्र-गुरु के ऊपर विश्वास करके, इस काम को हाथ में लो, लोगे तभी काम होगा । मैं आपको विश्वास नहीं दिला सकता, विश्वास आपको करना होगा क्योंकि यह विश्वास दिलाने-कराने की वस्तु नहीं है, मात्र विश्लेषण हो सकता है । हम अपनी प्रशंसा कर सकते हैं, उस आत्मा की प्रशंसा कर सकते हैं किन्तु दिखा नहीं सकते ।

ऐसा कौन सा बुद्धिमान होगा जो परोक्ष-ज्ञान में अर्थात् श्रद्धान में उतरने वाली चीज को हाथ में रखकर दिखा देगा । ध्यान रहे केवली भगवान भी इसमें समर्थ नहीं हो पायेंगे । आत्मा आपको देखना होगा, वे आत्मा को दिखा नहीं सकेंगे, वे आत्मा की बात बता सकेंगे । समयसार पढ़ोगे तो वही बात आयेगी, गुरु के मुख से सुनोगे तो वही बात आयेगी, केवली भगवान के मुख से सुनोगे तो वे भी वही सुनायेंगे, वही वाणी तो इसमें अंकित है ।अनन्त शक्ति के धारक होकर भी वे आपको अपनी आत्मा को हस्त में रखकर के दिखा नहीं सकेंगे, वह दिखाने की वस्तु नहीं है वह देखने की वस्तु है । किस प्रकार का उसका स्वरुप है ? यह तो बता देंगे, किन्तु बता देने के बाद आपका यह परम कर्तव्य है प्रत्यक्ष ज्ञान में उतर कर उसका संवेदन करने का । आप परोक्ष ज्ञान के ऊपर ही निर्धारित रह करके किसी पुस्तक पर विश्वास रखकर के इन्हीं क्रियाओं पर विश्वास कर लेंगे, इसी में धर्म को पूर्ण मान लेंगे तो यह उचित नहीं होगा ।

अभी गाड़ी का मुख मात्र मुड़ा है । आप लोगों का मुख मुड़ सकता है, किन्तु अभी चला नहीं है, यात्रा कहते है चलने को । हाँ गाड़ी का मुख मोड़ने को भी यात्रा कहते हैं । किन्तु मोड़ने का अर्थ उसकी पृष्ठभूमि है, जब तक गाड़ी मुड़ेगी नहीं यात्रा नहीं होगी । इसलिये मोड़ना भी आवश्यक है आपने बहुत पुरुषार्थ किया ध्यान रखना गाड़ी मोड़ने के लिये बहुत पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है और गाड़ी चालू करने के उपरान्त रेल का ड्राईवर तो आँख बन्द करके बैठ सकता है पर कार का ड्राईवर नहीं । आप कार के ड्राईवर हो, आप आँख बन्द कर लोगे तो मुश्किल हो जायेगा । रेल का मुख स्टेशन की ओर मोड़ कर उसे गति दे दी जाती है और

गाड़ी अपने आप पटरी पर चालू हो जाती है । यह भी पुरुषार्थ है आप लोगों का, कि कम से कम इस ओर दृष्टिपात तो किया, मुख तो मोड़ा पर आपकी गाड़ी चालू नहीं हो रही है । इसमें मुझे ऐसा लग रहा है कि ऐसा न हो कि आप गाडी को पुनः उसी ओर मोड़ लें । क्योंकि उस ओर मोड़ना तो बहुत आसान है और उधर आपका अनन्तकालीन अभ्यास हो चुका है इसलिये उस ओर बहुत जल्दी मुड़ सकता है । वीतरागता की ओर मोड़ने में प्रयास की आवश्यकत है किन्तु वीतरागता से राग की ओर मोड़ने में कोई प्रयास की आवश्यकता नहीं है । ऊपर की ओर पत्थर फेकने के लिये तो परिश्रम की आवश्यकता है पर नीचे फेकने के लिये कोई परिश्रम की आवश्यकता नहीं है, आप चाहे या न चाहे पर वह अपने आप नीचे आ जाता है और आयेगा यह नियम है । इसी प्रकार वीतरागता की ओर जाने के लिये तो प्रयास की आवश्यकता है पर राग की ओर जाने के लिये प्रयास की कोई आवश्यकता नहीं है । पूर्वसंस्कारवश अपने आप ही आपके कदम उठ जायेंगे ।

अब समय हो गया आपके कदम घर की ओर उठ जायेंगे । पर निज घर किधर है यह आप लोगों को पता नहीं । अभी तो कदम उधर ही उठेंगे, उसको इस प्रकार का अभ्यास दिया गया है, उसको इस प्रकार की गाइडेन्स मिल चुकी है कि वह यूं भी चले तो पैर उधर ही जाते हैं । अभ्यस्त हो चुका है जीवन, अपने आप ही कोर्नर पर मुड़ जाता है ।

मेरा अभ्यास खुद की ओर मुड़ने में बढ़ रहा है और आपका अभ्यास घर की ओर जाने में बढ़ रहा है । यह संस्कार की बात है । प्रतिदिन किया हुआ कार्य इस प्रकार अभ्यस्त होता चला जाता है कि उसको बताने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

वीतरागता की ओर मोड़ने के लिये बहुत प्रयास हो रहा है, वाचनिक प्रयास, मानसिक प्रयास और कायिक प्रयास; गुरु के उपदेश बार-बार अनेक प्रकार के उदाहरणों के माध्यम से, इसके उपरांत भी आपका उपयोग राग की ओर झुका ही रहता है । एक बार वह समय भी आ सकता है जबकि आपका राग पूर्णतः मिट सकता है । क्योंकि संभाव्य ही नहीं नियम है यह कि- "राग आत्मा का स्वभाव नहीं है" और एक बार स्वभाव की उपलब्धि होगी तो एक बार प्रयास करके आप इधर आ जायेंगे तो फिर छूटने का कोई सवाल ही नहीं, पर थोड़ा पसीना आने दो, कोई बात नहीं, फिर यात्रा प्रारम्भ हो जायेगी । टिकट खरीदते समय पसीना आता है और

लाईन में लगते समय पसीना आता है, ट्रेन में चढ़ते समय पसीना आता है किन्तु फिर बाद में बैठ जायेंगे, गाड़ी चलने लगेगी इधर-उधर की हवा आनी प्रारम्भ हो जायेगी और आराम के साथ निद्रा लग जायेगी इसी प्रकार मोक्ष-मार्ग में तकलीफ नहीं है बन्धुओं ! किन्तु मोक्ष मार्ग में लगते लगते तकलीफ महसूस होती है, कुछ तकलीफ जैसा लगता है, लगेगा कोई बात नहीं। प्रारंभ में औषधि कड़वी लगती है। पर बाद में परिणाम मीठा निकलता है। निकलेगा नियम रुप से निकलेगा यह मोक्ष-मार्ग की औषधि ही ऐसी है जो अनादिकालीन रोग को निकाल देगी और शुद्ध चैतन्य तत्व की उत्पत्ति उसमें से होगी और आनन्द ही आनन्द रहेगा उसमें।

अतः कुन्दकुन्द के साहित्य को पढ़कर अपने जीवन को उसी ओर ढालने का प्रयास करना चाहिये यही स्वाध्याय का, देव-शास्त्र-गुरु की उपासना का वास्तविक फल है, यदि यह नहीं है तो समझ लो कि वह सांसारिक उपलब्धि के लिये ही सिद्ध हो जायेगा कहाँ, क्या और कैसा करना है। किस ओर करना यही मोक्षमार्ग का प्रयास है और यदि वह प्रयास मोक्षमार्ग के लिये नहीं है तो संसार-मार्ग के लिये तो नियम से है। संसार-मार्ग अनादिकाल से चल रहा है। उसे "नहीं अपनाना है, नहीं" अपनाते हुये भी उस ओर जो उपयोग जा रहा है उससे दूर हटना है। अपनाना है तो एकमात्र मोक्षमार्ग जो कि स्वाश्रित है। और स्वाश्रित होने के लिये देव-शास्त्र-गुरु का आलंबन नितान्त आवश्यक है।

महावीर भगवान की जय

प्रकाशनों में आर्थिक-सहयोग

१. श्रीमान धनपाल जी जैन, त्रिनगर, दिल्ली
२. श्रीमति शांतिदेवीजी जैन धर्मपत्नी जय कुमार जी जैन, त्रिनगर, दिल्ली
३. श्रीमान नेमीचंद जी जैन, त्रिनगर, दिल्ली
४. श्रीमान बलवंतराय जी जैन, त्रिनगर, दिल्ली
५. श्रीमान विजय कुमार जी जैन एल.पी.एस. डायरेक्टर रोहतक
६. श्रीमान अरिहंत कुमार जी जैन, पानीपत
७. श्रीमान मेयरचंद अजीत प्रसादजी जैन, (रेवाडीवाले)
८. श्रीमान कस्तूरचंद भागचंदजी काशलीवाल, कलकत्ता
९. श्रीमान हुकमचंद धनकुमारजी पाटनी, कलकत्ता
१०. श्रीमान सदभूषण जी जैन, हांसी
११. श्रीमान राजकुमार जी जैन (दडे वाले), हांसी
१२. श्रीमान मेसर्स जैन पेट्रॉल सप्लायिंग कम्पनी, हांसी
१३. श्रीमान सरदारीलाल जी जैन, बम्बई
१४. श्रीमान जगदीशभाई खोखानी, घाटकोपर, बम्बई
१५. श्रीमान शांति भाई महेता, बम्बई
१६. श्रीमान विपिन भाई गोड़ा, बम्बई
१७. श्रीयुत कंचनबेन चिनुलाल दोषी, सुदासणा
१८. श्री दिगम्बर जैन महिला मंडल, हांसी
१९. श्रीमान ब्रजभूषण जी बलवंतराय जी जैन, दिल्ली
२०. डॉ. भरतभाई कांतिलाल बखारिया, यु.एस.ए.
२१. श्रीमान जयकुमार जी जैन (दडेवाले) हांसी
२२. श्रीमान चन्द्रप्रकाश जी जैन (सफोदो मण्डी)
२३. श्रीमान कशमीरी लाल जी जैन (सफोदो मण्डी)
२४. श्रीमान विनोदजी जैन अशोक बिहार (दिल्ली)
२५. श्रीमति कमलेश सुकौशल जी जैन (दिल्ली)
२६. श्रीमान कुलभूषण जी जैन, एडवोकेट (हांसी)
२७. एक सदग्रहस्थ की ओर से (बम्बई)
२८. श्रीमान ललित जी सुपुत्र मोहनलाल जी जैन (अहमदाबाद)

श्री दि. जैन वीर विद्या संघ ट्रस्ट, गुजरात के प्रकाशन

१.	सामान्य प्रश्नोत्तर माला हिन्दी (१३०० प्रश्नोत्तर)	नवम संस्करण	१०.००
२.	तत्त्वार्थ प्रश्नोत्तर माला हिन्दी (११०० प्रश्नोत्तर)	तृतीय संस्करण	१०.००
३.	अभिषेक पूजन पाठ संग्रह (६४ पेज पॉकेट बुक)	पंचम संस्करण	२.५०
४.	द्रव्यसंग्रह प्रश्नोत्तर माला हिन्दी (अर्थ, भावार्थ एवं ३०० प्रश्नोत्तर)	प्रथम संस्करण	१०.००
५.	सामान्य ज्ञान प्रश्नोत्तर माला गुजराती (१३०० प्रश्नोत्तर)	द्वितीय संस्करण	१०.००
६.	तत्त्वार्थ प्रश्नोत्तर माला गुजराती (८०० प्रश्नोत्तर)	प्रथम संस्करण	५.००
७.	तत्त्वार्थ सूत्र सार्थ पाकेट बुक (गुजराती)	प्रथम संस्करण	५.००
८.	अभिषेक पूजन पाठ संग्रह गुजराती (६४ पेज पॉकेट बुक)	तृतीय संस्करण	२.५०
९.	आत्मशोधन गुजराती (प्रतिक्रमण)	द्वितीय संस्करण	८.००
१०.	गुणस्थान प्रश्नोत्तर माला (लगभग ६४० प्रश्नोत्तर)	प्रथम संस्करण	१०.००
११.	तत्त्वार्थ सूत्र सार्थ (पॉकेट बुक)	द्वितीय संस्करण	५.००
१२.	छहढाला त्रय प्रश्नोत्तर	द्वितीय संस्करण	१०.००
१३.	नमस्कार पुष्पिका	प्रथम संस्करण	३.००
१४.	बाल बोध (१,२,३,४ भाग)	द्वितीय संस्करण	५.००
१५.	प्रश्नावली (१००० प्रश्न) उत्तर सहित	पंचम संस्करण	१०.००
१६.	भाव भक्ति	द्वितीय आवृत्ति	३.००
१७.	जैन सिद्धांत प्रवेशिका (गुजराती)	प्रथम आवृत्ति	१०.००
१८.	लहरों से अथाह की ओर	प्रथम आवृत्ति	३.००
१९.	पूर्णोदय शतक	प्रथम आवृत्ति	प्रकाशन सहयोग
२०.	सर्वोदय शतक	प्रथम आवृत्ति	प्रकाशन सहयोग
२१.	नंदीश्वर भक्ति (पद्यानुवाद)	प्रथम आवृत्ति	प्रकाशन सहयोग
२२.	साधना पथ का पाथेय	प्रथम आवृत्ति	प्रकाशन सहयोग
२३.	गुरुवाणी प्रवचन (आ.श्री विद्यासागर जी)	द्वितीय संस्करण	१०.००
२४.	आराधना कथा कोष	प्रथम संस्करण	प्रकाशन सहयोग
२५.	जैन सिद्धांत प्रवेशिका (हिन्दी)	प्रथम संस्करण	१०.००

२६ प्रवचनप्रमेय
२७ प्रवचन प्रदीप
२८ प्रवचन पर्व
२९ प्रवचन पारिजात
३० विद्याधर से विद्यासागर
३१ तेरा सो एक
३२ प्रवचन पीयूष
३३ आत्मानुभूति ही समयसार है
३४ आदर्श कौन...?
३५ ब्रह्मचर्य चेतन का भोग
३६ डबडबाती आँखें
३७ भक्त का उत्सर्ग
३८ उन्नति की खुराक अचौर्यव्रत
३९ मनवचकाय की एकाग्रता सहित आत्मलीनता ही ध्यान है
४० मूर्त से अमूर्त की ओर......
४१ जैन दर्शन का हृदय
४२ मर, हम, मरहम बने.....
४३ आनन्द का स्त्रोत आत्मानुशासन
४४ सागर में विद्यासागर
४५ सत्य की छाँव में
४६ न धर्मो धार्मिकैर्बिना
४७ प्रवचनद्वय (कर विवेक से काम, चरण आचरण की ओर)
४८ परोन्मुखता ही परिग्रह है
४८ निजात्म रमण ही अहिंसा है

प्रस्तुत २५ कृतियों का मूल्य
रु. २०१,इन कृति से प्राप्त राशि अगलें प्रकाशनों के उपयोग में ही ली जायेगी ।

प्राप्ति स्थान :
वीर विद्या संघ, गुजरात
बी/२, संभवनाथ एपार्टमेन्ट, बखारिया कालोनी
उस्मानपुरा, अहमदाबाद – १३ (गुजरात)
फोन नं. ४०६८२३

सर्वोदय-अष्टक

रचयिता - जैनाचार्या श्री विद्यासागर महाराज

सर्वोदय मम पन्थ हो,
सर्वोदय - पाथेय ।
सर्वोदय को नमन हो,
सर्वोदय हो ध्येय ॥१॥

सर्वोदय ही पोत है,
सर्वोदय सुख - स्रोत ।
सर्वोदय को नमन हो,
सर्वोदय वर ज्योत ॥२॥

सर्वोदय ही ग्रन्थ है,
सर्वोदय निर्ग्रन्थ ।
सर्वोदय को नमन हो,
सर्वोदय अरहन्त ॥३॥

सर्वोदय का गान हो,
सर्वोदय का मान ।
सर्वोदय को नमन हो,
सर्वोदय वरदान ॥४॥

सर्वोदय गुणवन्त है,
सर्वोदय ऋषि सन्त ।
सर्वोदय को नमन हो,
सर्वोदय जयवन्त ॥५॥

सर्वोदयमें श्वास लूँ,
सर्वोदय में वास ।
सर्वोदय को नमन हो,
सर्वोदय का दास ॥६॥

सर्वोदय को भूल ना,
सर्वोदय भव कूल ।
सर्वोदय को नमन हो,
सर्वोदय सुख - मूल ॥७॥

सर्वोदय में रमण हो,
सर्वोदय में अन्त ।
सर्वोदय को नमन हो,
सर्वोदय पर्य्यंत ॥८॥

५१/A

सन्तशिरोमणी आचार्यप्रवर श्री विद्यासागर महाराज

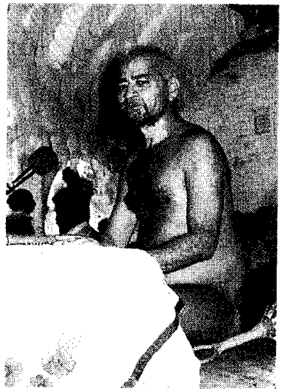

जन्म - नामकरण : विद्याधर
जन्म तिथि : आश्विन शुक्ल पूर्णिमा (शरदपूर्णिमा) वि.सं. २००३, दिनांक १०-१०-१९४६, गुरुवार
जन्म स्थल : सदलगा (बेलगाम) कर्नाटक
पितृ नाम : श्री मल्लप्पाजी अष्टगे, कर्नाटक (समाधिस्थ मुनिश्री मल्लिसागरजी)
मातृ नाम : श्री श्रीमतिजी अष्टगे (समाधिस्थ आर्यिका श्री समयमतीजी)
मातृभाषा : कन्नड़

मुनि - दीक्षा : आषाढ़ शुक्ल पंचमी, विक्रम संवत् २०२५ ३० जून १९६८, रविवार, अजमेर (राजस्थान)
आचार्य पद : मार्गशीर्ष कृष्ण द्वितीया, विक्रम संवत् २०२९, दिनांक २२ नवम्बर ७२, बुधवार, नसीराबाद (अजमेर), राजस्थान
शिक्षा-दीक्षा गुरु : आचार्य श्री ज्ञानसागरजी मुनि महाराज

संक्षिप्त - परिचय : चारित्र-चक्रवर्ती आचार्यश्री शान्तिसागर महाराज के उपदेशामृत ने बचपन में विरक्ति के बीज बोये और आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत आचार्यश्री देशभूषणजी से ग्रहण किया। आचार्यश्री ज्ञानसागर महाराज से शिक्षा और दीक्षा प्राप्त की ।

आचार्यश्री विद्यासागर महाराज को जहाँ प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत, मराठी, हिन्दी, कन्नड़ तथा अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं में प्रकाण्ड पाण्डित्य प्राप्त है, वहीं दर्शन, इतिहास, संस्कृति, व्याकरण, साहित्य, मनोविज्ञान और योग आदि विद्याओं में भी अनुपम वैदुष्य उपलब्ध है। आप में आशु-कवित्व तथा प्रत्युत्पन्न-मतित्व अत्यन्त प्रशष्य-गुण हैं ।

आपने भव्य जीवों के आत्मकल्याण हेतु अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है। आपके द्वारा लिखित मूक माटी (महाकाव्य) आज देशभर में विद्वत्समाज और साहित्यकारों के बीच बहुचर्चित है। इसके अतिरिक्त चेतना के गहराव में (सचित्र प्रतिनिधि काव्य संकलन) तथा नर्मदा का नरम कंकर, डूबो मत / लगाओ डुबकी, तोता क्यों रोता ? काव्य संग्रह भी हैं। संस्कृत में श्रमणशतकम्, निरंजनशतकम्, भावनाशतकम्, परीषहजयशतकम् और सुनीतिशतकम् और शारदा-स्तुति स्रजित की हैं एवं इनही पाँच शतकों का हिन्दी पद्यानुवाद तथा राष्ट्रभाषा में निजानुभवशतक, मुक्तकशतक, स्तुतिशतक, सर्वोदयशतक तथा पूर्णोदयशतक मौलिक रचित हैं। इनके अतिरिक्त आपने समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, द्वादशानुप्रेक्षा, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड, रत्नकरण्डक - श्रावकाचार, समणसुत्तं, देवागम - स्तोत्र, स्वयंभूस्तोत्र, इष्टोपदेश, समाधितंत्र, नन्दीश्वरभक्ति, द्रव्यसंग्रह, समयसार - कलश तथा गोमटेश - थुदि आदि का सरल एवं सुबोध पद्यानुवाद भी किया है। लगभग २५ प्रवचन संग्रहों के अतिरिक्त अनेक स्फुट काव्य संस्कृत, हिन्दी, प्राकृत, अंग्रेजी तथा कन्नड़ आदि भाषाओं में लिखे हैं।

आपके द्वारा अभी तक लगभग १३२ मुनि-आर्यिका-एलक एवं क्षुल्लक साधुजन दीक्षित हैं। आपके ही सान्निध्य में २०वीं शताब्दी में जहाँ षट्खण्डागम तथा कषायपाहुड ग्रंथ की वाचना प्रारंभ हुई वहीं आत्म-कल्याण के इच्छुक लगभग २२ साधु / साधकों ने आपके निर्यापकत्व में आगमानुसार रीति से सल्लेखनापूर्वक समाधिमरण को प्राप्त किया है ।